मुस्लिम तुष्टीकरण के दुष्परिणाम

क्या मुस्लिम तुष्टिकरण संघ परिवार द्वारा अपने राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए दशकों से गढ़ा एक तथ्य है या कल्पित शब्द? इस प्रसंग में तुष्टिकरण का अर्थ क्या है और क्या इससे आम मुस्लिम का भला हुआ है? और तुष्टिकरण की नीति से राष्ट्र के रूप में भारत तथा अन्य समुदायों पर क्या प्रभाव पड़ा?

सर विंस्टन चर्चिल ने कहा था, *"एक तुष्टिकर्ता वह है जो मगरमच्छ को भोजन देता है और यह उम्मीद करता है कि वह उसे एक दिन निगल लेगा।"* मुस्लिम कट्टरपंथियों के साथ नरम रवैये के भारतीय अनुभवों पर यह एक पूर्णतया उचित कथन है। इसकी शुरूआत गांधीजी के उस समर्थन से हुई थी, जब उन्होंने 1920 में पूरे मन से सुदूर तुर्की में '*खिलाफत*' की बहाली का समर्थन किया था। तुष्टिकरण की यह प्रक्रिया तीसरे और चौथे दशक में भी अबाधित रूप से जारी रही और 1947 में भारत के बंटवारे व पाकिस्तान के निर्माण के साथ शिखर पर पहुंची। तब से पाकिस्तान वैश्विक आतंकवाद के केंद्र के रूप में उभरा, जिसका मुख्य निशाना 'शेष' भारत को बनाया गया।

जनवरी 2004 और मार्च 2007 के बीच जम्मू-कश्मीर, पूर्वोत्तर भारत और वामपंथी आतंकवादी हिंसक घटनाओं में कुल 3,647 बेगुनाह लोग मारे गए, जिसके कारण भारत को इराक के बाद विश्व के दूसरे सबसे खतरनाक क्षेत्र के रूप में विशेष पहचान मिली। पिछले एक दशक में भारत में 53,000 से ज्यादा लोग आतंकवादी हिंसा के शिकार हुए, जबकि कारगिल समेत सभी युध्दों में महज 8,023 लोग मारे गए।

यह सिर्फ आंकड़ों की बात नहीं हैं, बल्कि उसके बाद की गई अथवा न की गई कार्यवाही से तुष्टिकरण की नीति और अधिक स्पष्ट हो जाती है। टाइम्स ऑफ इंडिया की जांच-पड़ताल (अगस्त 2007 के आखिरी सप्ताह में प्रकाशित हुई थी) जिस से पता चला कि अधिकांश जिहादी वारदातों में चाहे कितने ही बड़े पैमाने पर हिंसा क्यों न हुई हो और चाहे कितनी ही संपत्ति क्यों न नष्ट हुई हो- मामले दर्ज नहीं किए गए। अधिकांश मामलों की जांच किसी न किसी बहाने से रोक दी गई, क्योंकि खोज के सूत्र किसी खास समुदाय की ओर बढ़ रहे थे। यह तुष्टिकरण है। क्या यह किसी प्रकार राष्ट्रवादी मुस्लिमों की सहायता करता है, जो मुस्लिम समुदाय का एक बड़ा हिस्सा है।

हैदराबाद के लुंबिनी पार्क विस्फोट के तीन महीने पहले ठीक इसी तरह का विस्फोट मक्का मस्जिद में हुआ था। अभी तक इसकी जांच-पड़ताल एक इंच भी आगे नहीं बढ़ी। दरअसल, जैसा कि आडवाणीजी ने संसद में (मानसून सत्र 2007) उल्लेख किया था, तीन संदेहास्पद व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया था। बाद में उन्हें छोड़ दिया गया, वह इसलिए नहीं कि वे

बेगुनाह थे, बल्कि ऐसा करने के लिए राजनैतिक दबाव पड़ा। अर्थशास्त्री विवेक राय ने उल्लेख किया कि हालिया हैदराबाद के विस्फोट से महज कुछ दिन पहले इस्लामिक चरमपंथी गुट एआईएमआईएम ने, जिसके पास महज एक संसद सदस्य एवं चार विधान सभा सदस्य हैं, मक्का मस्जिद विस्फोट की जांच तथा आतंकवादियों के खिलाफ आतंक निरोधी दस्ते की कठोर रवैये की निंदा की। तत्पश्चात् जांच सीबीआई के हवाले कर दी गई। टाइम्स ऑफ इंडिया की खोजबीन से मालूम हुआ कि जांच का एक हिस्सा ही सीबीआई को सौंपा गया, इसलिए जांच आगे नहीं बढ़ सकी। परिणामस्वरूप संपूर्ण जांच ठंडी पड़ गई। यह भी उल्लेखनीय है कि गृह मंत्री शिवराज पाटिल, आडवाणीजी द्वारा लगाए गए आरोपों का उत्तर देने में असफल रहे कि मक्का मस्जिद मामले में संदेहास्पद राजनैतिक कारणों से छोड़े गए थे। न तो इस केस में और न ही मालेगांव विस्फोट में तथा न ही मुंबई ट्रेन धमाके के अभियुक्तों की धर-पकड़ अभी तक हो सकी है। और असल में सभी पूर्व जांच को स्थगित कर दिया गया है। कारण बिल्कुल साफ है। जांच की सुई मुस्लिम समुदाय वाले इलाकों की ओर संकेत करती है। जाहिर है कि वोट बैंक के कारण वे आधिकारिक निगरानी से पूर्णतया सुरक्षित हैं कि उनके बीच कौन से संदेहास्पद व्यक्ति आते-जाते हैं।

टाइम्स ऑफ इंडिया अपने संपादकीय में कहता है कि आतंकवादियों के प्रति भारत की कमजोर व ढुलमुल (दफ्तरी) प्रतिक्रिया, ज्यादा आतंकी घटनाओं का प्रमुख कारण है और वास्तव में यह तुष्टिकरण नीति के स्वाभाविक नतीजे हैं। केंद्रीय गृह-मंत्री पोटा जैसे कठोर आतंकविरोधी कानून की मांग को इंकार करते हैं। जैसा कि हम जानते है कि पोटा को वर्तमान सरकार ने सत्ता में आते ही रद्द कर दिया था। उनकी प्रतिक्रिया थी कि इस तरह का कानून, राक्षसी कानून होगा। टाइम्स ऑफ इंडिया ने लोकतांत्रिक देशों की एक फेहरिस्त दी है, जिन्होंने कठोर आतंक विरोधी कानूनों का निर्माण किया है, जिसके जरिए जांच अधिकारी संदेहास्पद व्यक्तियों की धर-पकड़, उनके ठिकाने की जांच और साइबर आधारित प्रमाणों को हासिल करते हैं। अधिकांश मामलों में आतंकी गतिविधियों की सजा आजीवन कारावास से कम नहीं होती, वह भी इसलिए कि अधिकांश यूरोपियन देशों ने मौत की सजा रद्द कर दी है। यहां के सेक्युलर इस तरह के कानूनों को राक्षसी कानून कहकर खारिज करते हैं। इस प्रकार जेहादी आतंकी गुटों को पहले ही नोटिस भेज दी जाती है कि उनके साथ सहानुभूतिपूर्ण रवैया अपनाया जाएगा।

सत्ताधारी गठबंधन-क्या इनकी गतिविधियों को देखकर हम इन्हें माफिया कहें?- ने आतंकवादी गतिविधियों पर आंखें मूंद ली हैं और इसे महज दिग्भ्रमित बच्चों का कारगुजारी बताया हैं। दरअसल, सत्ताधारी गठबंधन आतंक के खिलाफ युध्द छेड़ने से जानबूझकर अलग है। टाइम्स ऑफ इंडिया ने ठीक ही कहा कि बहुत लंबे समय से हम आतंक को राजद्रोह की

तरह निपटने में असफल रहे। फिर कैसे हम आतंकवादियों के खिलाफ लोगों को एकजुट खड़े होने के लिए प्रेरित कर सकते हैं?

तुष्टिकरण नीति उस वक्त बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है, जब हम आतंकी घटनाओं से निपटने के वर्तमान सरकार के दृष्टिकोण की तुलना अंतराष्ट्रीय प्रयासों मसलन- अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन और आस्ट्रेलिया की नीतियों से करते हैं। यहां तक कि सऊदी अरब, मलेशिया और इंडोनेशिया जैसे मुस्लिम देश भी इसे अंतर्राष्ट्रीय समस्या मानते हैं। लेकिन भारत ऐसा नहीं मानता। पेट्रियाट एक्ट (जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है) आतंकवादियों को आम आदमी से भिन्न व्यवहार करता है। यह कानून आतंकवादियों, उनको समर्थन देने वालों व उन्हें वित्तीय मदद मुहैया कराने वालों के साथ कठोर है। लगभग सभी देशों ने आतंकवादियों को वित्तीय मदद से रोकने के लिए कदम उठाए हैं, लेकिन हमारी सरकार सुस्त है। आखिर क्यों? माक्र्सवादियों द्वारा समर्थित जेहाद का भयानक चेहरा यूपीए सरकार व कांग्रेस के पीछे छिपा है।

आतंकवाद जैसे गंभीर मुद्दे पर कांग्रेस ने कैसे अपने आप को एआईएमआईएम के हवाले कर दिया। बांग्लादेश के सीमा पर पकड़े गए एक व्यक्ति से खुफिया एजेंसी को पहले ही सूचना प्राप्त हो चुकी है कि बांग्लादेश और पाकिस्तान से बड़े पैमाने पर आरडीएक्स न केवल पहुंच चुका है, बल्कि उसका वितरण भी हो चुका है। समाचार-पत्रों की रिपोर्ट के अनुसार वे इसकी जांच करना चाहते थे और ठिकानों का पता भी लगाना चाहते थे। लेकिन आश्चर्यजनक यह है कि आंध्र प्रदेश की कांग्रेसी सरकार ने अधिकारियों को ऐसा करने की अनुमति नहीं दी, क्योंकि उन्हें डर था कि इससे मुस्लिम भावनाएं भड़केगी। मुसलमानों की प्रतिक्रिया की डर से पकड़े गए इन लोगों को छोड़ दिया गया। आशंका के मुताबिक हैदराबाद का दूसरा विस्फोट इसी का नतीजा था।

ये तुष्टिकरण नीति के पुरूस्कार हैं। लेकिन मामला यहीं पर खत्म नहीं होता। अफजल गुरू की फांसी पर टाल-मटोल रवैये को देखें। एक कांग्रेसी मुख्यमंत्री खुले रूप से कहता है कि वह चाहता है कि सरकार फांसी की सजा को क्रियान्वित न करे। केंद्रीय गृह मंत्री यह बताने में असफल रहे हैं कि किस परिस्थिति बस संसद पर हमले की योजना में शामिल व्यक्ति की फांसी में देरी हो रही है। वामपंथी और स्वयंभू समाजवादी बड़े मसले को उठा रहे हैं कि एक समुदाय की भावना किस तरह प्रभावित होगी, यदि कोर्ट द्वारा दी गई फांसी के आदेश का क्रियान्वयन नहीं होता है। इसका अर्थ है कि इस देश में दो कानून हैं। एक गैर मुस्लिमों के लिए और दूसरा मुस्लिमों के लिए तथा अपराधियों मुस्लिम कानूनन मिलने वाले दण्ड से भी मुक्त रहते हैं मुस्लिम समुदाय के डर से आतंकी सौदागरों के प्रति अनिच्छुक कार्यवाही, धर्मनिरपेक्ष गुटों की एक रणनीति है, जो तुष्टिकरण नीति के रूप से लगातार जारी है। दूसरे

अर्थों में इसका मतलब यह भी है कि मुस्लिम समुदाय का तथाकथित गुस्सा और इस गुस्से के कारण आतंक का सहारा लेने वालों के प्रति प्रदर्शित सहानुभूति को न्यायसंगत बनाता है। अनेकमुंही शैतानआतंकवाद के प्रति नरम रवैया दरअसल, तुष्टिकरण की सौ-मुंही नीति का महज एक भाग है। नेहरू की सेक्यूलर छूट जिसमें जम्मू-कश्मीर को धारा 370 व हिंदू कोड बिल कानून (लेकिन समान नागरिक संहिता नहीं) के जरिए स्वायत्तता दी गई। धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार के तहत धर्म-परिवर्तन व अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थान जारी रहे। गौ-हत्या प्रतिबंध मखौल की वस्तु बना और हज सब्सिडी दी गई। इनको आस्था की वस्तु के रूप में (राष्ट्र के राजनीतिक जीवन में) देखा गया और इन सेक्युलर प्रावधानों के बुरे नतीजे अब हमारे सामने स्पष्ट हैं।

समय के साथ, बीमारी बढ़ती ही गई। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने घोषणा की कि भारत के संसाधनों पर मुसलमानों का पहला हक है। 2001 की जनगणना के धर्म आधारित आंकड़ों की मनचाही व्याख्या, पोटा को निरस्त करना, मुस्लिमों की आर्थिक स्थिति में सुधार की सिफारिश के लिए सच्चर कमेटी की नियुक्ति, मुस्लिमों को 5 प्रतिशत आरक्षण देने की वकालत, अल्पसंख्यक संस्थाओं को अन्य पिछड़ा वर्ग आरक्षण से बाहर रखना, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी को अल्पसंख्यक दर्जा, आईएमडीटी एक्ट पर सुप्रीम कोर्ट के निर्णय को पलटने की कोशिश, अल्पसंख्यकों के लिए एक अलग मंत्रालय का गठन, हज सब्सिडी में बढ़ोत्तरी, मदरसों को यूनिवर्सिटी से संबध्द करने के इरादे की घोषणा आदि तुष्टिकरण नीति के विविध रूप हैं।

छद्म-भावना, छद्म-सहानुभूति और पवित्र संवेदनशीलता ने सेक्युलरवाद के चारों तरफ एक तिलिस्म तैयार किया है। यह भी एक आकस्मिक घटना है कि पूरा विश्व अमेरिका से लेकर यूरोप और आस्ट्रेलिया तक एक ही समय में एक साथ एक ही समस्या से जूझ रहा है। भारत इससे केवल एक विचित्र संतुष्टि प्राप्त कर सकता है कि उत्तर औपनिवेशिक काल में समस्त विश्व की तुलना में भारत मुस्लिम समस्या को समझने में ज्यादा गलती नहीं की। पश्चिम में पिछले कुछ समय में आतंकवाद पर तमाम पुस्तकें लिखी गई, जिसमें इस्लामिक आतंकवाद के उभार व उनके कारण पश्चिम में मडंराते खतरों पर चर्चा हुई। मुख्य प्रकाशक, यूनिवसिर्टी प्रेस व मुख्य मीडिया ने इस समस्या पर काफी गौर किया और काफी विवेचना की। उन्होंने इसका खुलासा किया कि पश्चिम के उदारवादी मूल्यों, मसलन बहु-सांस्कृतिकवाद, लोकतंत्र, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का इस्लामिक चरमपंथी उद्देश्यों के लिए किस तरह दुरूपयोग किया गया। वहीं भारत की मीडिया, शैक्षणिक समुदाय व राजनीतिज्ञों ने शायद ही इस प्रकार की खोजबीन की। ऐसे प्रश्नों पर चर्चा चलाने मात्र से ही, हालांकि अकादमिक तौर पर ही, उसे सांप्रदायिक घोषित कर दिया जाता है। ऐसा क्यों?

इस सेक्युलर उद्योग में कुछ निहित स्वार्थ संलग्न हैं, जबकि सच्चाई यह है कि यह उद्योग जहरीले उत्पाद बना रहा है, जो आने वाले समय में सभ्यता का गला घोट देगी। धर्मनिरपेक्षवाद के ये झंडाबरदार सांप्रदायिकता के सबसे वीभत्स रूप को पोषित कर रहे हैं। हम नैतिक रूप से सही हैं या गलत, यह बहस अब काफी पीछे छूट चुकी है। अब हम एक ऐसे समय में हैं जब इसके द्वारा किए भयानक कृत्यों का उधार चुकाना है। केवल अच्छी-अच्छी बात करके हम राष्ट्रीय बैचेनी को नहीं ढक सकते। विस्फोटकों को ढेर किसी भी समय विस्फोट कर सकता है और इसके नतीजे बहुत ही भयानक होंगे।

स्वतंत्र भारत की नीतियों के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि धर्मनिरपेक्षवादी किस तरह मुस्लिम चरमपंथियों के जहरीले वृक्ष का पोषित किए। इस दोष का बहुत बड़ा हिस्सा निम्न कारणों से कांग्रेस के सिर पर है। गांधीयुग में हिंदू-मुस्लिम एकता के नाम पर धर्मनिरपेक्षता की मीठी-मीठी बातें हुईं लेकिन अनैतिक बंटवारे के बाद भी कुछ भी बेहतर हाथ नहीं लगा। ब्रिटिश से सत्ता हासिल करने व अगले तीन दशकों तक शासन संभालने के कारण इसने (कांग्रेस) संवैधानिक प्रावधानों की नींव रखी। आजाद भारत के अधिकांश वर्षों में इसने ही शासन किया। भाजपा, शिवसेना और अकाली दल को छोड़कर दूसरी पार्टियों ने भी मुस्लिम चरमपंथियों की खुशामद करके कांग्रेस को बाहर करने की कोशिश की। हिंदू-मुस्लिम संबंधों का इतिहासयदि कोई 1300 वर्षों के हिंदू-मुस्लिम संबंधों की वस्तुपरक जानकारी लेने का इच्छुक है, तो उसे इतिहास के पन्नों में झांकना होगा। नौ-परिवहन (व्यापार) के जरिए दक्षिण भारत के तटों पर इस्लाम के पहुंचने की घटना कोई उल्लेखनीय बात नहीं थी। लेकिन जब वे मध्यकाल में आक्रमणकारी के रूप में उत्तर-भारत के रास्ते आए, तब उनका संघर्ष उस हिन्दू धर्म के साथ हुआ, जो कि धर्म का विरोध नहीं करता है। मुहम्मद बिन कासिम के नेतृत्व में अरबों ने 712 ईसवी में सिंध पर आक्रमण कर उस पर कब्जा कर लिया और हिंदू राजा दहीर 20 जून को मारा गया। राजा की मृत्यु के बाद रानी और दूसरी औरतों ने अपने सम्मान की रक्षा के लिए जौहर कर लिया। 17 वर्ष से ज्यादा के जिन पुरूषों ने इस्लाम स्वीकार करने से इनकार किया वे मौत के घाट उतार दिए गए। बाद के सभी युध्दों में, जिसमें मुस्लिम विजेताओं ने गैर-मुस्लिमों को रौंदा, पराजितों को भयानक अपमान सहना पड़ा। सच तो यह है कि मध्यकाल का इतिहास निशंस हत्या, मारकाट, लूटपाट, जबरन धर्म-परिवर्तन, हिंदू महिलाओं के साथ बलात्कार से भरा पड़ा है, जैसा कि मुस्लिम इतिहासकारों ने भी उल्लेख किया है। मध्यकालीन भारत ने ऐसे सांस्कृतिक संघर्ष को देखा, जिसमें मुस्लिम काफी भारी पड़े। लेकिन शिवाजी और गुरू गोविंद के उदय के बाद (दोनों पंथ निरपेक्ष राजा थे) हिंदू अस्मिता को काफी बल मिला।

20 फरवरी 1707 को औरंगजेब की मृत्यु के बाद हिंदू-मुस्लिम संबंधों का एक युग खत्म हो गया। उस समय मुगल साम्राज्य अपने रक्तरंजित इतिहास के आधो-काल खंड से जब आगे बढ़ चुका था, तब इसका मुस्लिम वर्चस्व टूटने लगा था। औरंगजेब की मृत्यु से पहले के 180 सालों में में 6 मुगल शासक- बाबर, हुमायूं अकबर, शाहजहां, जहांगीर और औरंगजेब ने शासन किया। सभी शासक शक्तिशाली थे। अकबर को छोड़कर शेष सभी बहुत हद तक इस्लामी धर्मान्धाता के शिकार थे। जबकि अगले 52 सालों में (1707 से लेकर 1759 तक) आठ मुगल शासक रहे, जिसमें से चार की हत्या कर दी गई, एक को अपदस्थ कर दिया और महज तीन ही शांतिपूर्ण मृत्यु हासिल कर सके। जून 1757 में प्लासी के युध्द में क्लायु के हाथों सिराजुद्दौला की हार के बाद मुगल साम्राज्य का पतन तेजी से होना शुरू हो गया।

भारतीय इस्लाम 18 वीं शताब्दी में मराठा-सिख-जाट और राजपूतों के नेतृत्व में स्थानीय शक्तियों ने विदेशी शक्तियों पर अपना अधिकार (क्षेत्रीय-सांस्कृतिक दोनों) जमाना शुरू कर दिया। अंतिम मुगल बादशाह भारतीय मूल्यों से काफी प्रभावित थे। एक खास तरह के इस्लाम का तेजी से विकास हुआ, जिसने अन्य धर्मों के साथ सामंजस्य बैठाया। अवध का नबाव वाजिद अली शाह औरंगजेब से कोसों दूर था। भारत के 95 प्रतिशत से ज्यादा मुस्लिम धर्म-परिवर्तन (हिंदुओं) से बने हैं। मेरा विश्वास है कि यह आपसी आदान-प्रदान यदि अंग्रेजों द्वारा बाधित नहीं किया गया होता, तो यहां के मुस्लिम अपने धर्म पर विश्वास करते हुए भी देश की संस्कृति में रच-बस जाते। अंतिम मुगल शासक बहादुर शाह जफर मराठों का पेंशनर था। दूसरे आंग्ल-मराठा युध्द में पटपड़गंज की लड़ाई में मराठा, ब्रिटिश जनरल लेक के हाथों पराजित हो गए। युध्द की याद में पत्थर का एक छोटा सा स्मारक बना, जो दिल्ली के निकट नोयडा गोल्फ कोर्स के आज भी मौजूद है।

ब्रिटिश के साथ मुठभेड़ मुस्लिमों ने नहीं बल्कि हिंदुओं ने शुरू की। 1857 में पहली गोली ब्राहमण, मंगल पांडे ने चलाई। प्रथम स्वातंत्र्य संग्राम में शामिल अधिकांश शासक हिंदू ही थे, लेकिन उनका मकसद बहादुर शाह द्वितीय को बतौर बादशाह गद्दी पर बैठाना था। दिल्ली की गद्दी पर बैठते ही बहादुर शाह का प्रथम आदेश गौ-हत्या पर प्रतिबंध था और जिसके न होने पर फांसी की सजा का प्रावधान था।

बांटो और राज करो1857 के विद्रोह को दबाने के बाद परिस्थितियों में भारी बदलाव आया। अपने साम्राज्यवादी हितों को सुरक्षित करने के लिए ब्रिटिश ने 'बांटो और राज करो' की नीति का अनुसरण किया और दो धाराओं की मिलन प्रक्रिया को उलट दिया। एक ब्रिटिश अफसर, कर्नाटिकश ने एशियाटिक रिव्यू में लिखा है कि भारतीय प्रशासन-राजनीतिक, नागरिक व सैनिक- का सिध्दांत Divide et impera होना चाहिए। लार्ड एलफिंस्टोन ने 1859 में एक आफिशियल रिकॉर्ड में दर्ज किया कि क्पअपकम मज पउचमतं रोमन का पुराना सिध्दांत है

और यह हमारा भी होना चाहिए। (Lord Elphinstone, Governor of Bombay, Minute of May 14, 1859)। 1888 में सर जान स्ट्राचे लिखते हैं, **“विशुध्द सत्य यह है कि दो विरोधी धर्मों का एक साथ अस्तित्व भारत में हमारी राजनीतिक स्थिति का एक मजबूत आधार है“** (Sir John Strachey, India, 1888, p.255½)

द्वि-राष्ट्रीय सिध्दांत व अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी 'बांटो और राज्य करो' की नीति के तहत अंगरेजों ने सर सैयद अहमद खान को प्रोत्साहित करना शुरू किया, जो 1857 की क्रांति से काफी पहले ही ईस्ट इंडिया कंपनी की सेवा में शामिल हो चुके थे। 1857 के गदर के दौरान वे अंग्रेजों के साथ रहे। बाद में चलकर वे अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी की स्थापना की (1920), जो बाद में मुस्लिम राजनीति (पाकिस्तान मूवमेंट) का केंद्र बिंदु बना।

सर सैयद इस बात को बखूबी समझते थे कि ब्रिटिश मालिकों की सेवा करके वे मुस्लिमों के हितों की रक्षा बेहतर ढंग से कर सकते हैं। पिछले व वर्तमान शासकों के बीच की मैत्री हिंदुओं के खिलाफ थी। परंपरागत मुस्लिम समुदाय के लिए उन्होंने अपने विचारों को सैध्दांतिक जामा पहनाया। उन्होंने मुस्लिमों व ईसाइयों की मित्रता को इस्लामिक करार दिया। सर सैयद अहमद खान, मुहम्मद एंग्लो-ओरिएंटल कॉलेज फंड कमेटी के अवैतनिक आजीवन सचिव रहे और चंदे निश्चित तौर पर मुस्लिम व ईसाइयों से ही लिए गए न कि किसी अन्य से।

उन्होंने यह भगीरथ प्रयास किया कि मुसलमान व ब्रिटिश सबसे अच्छे मित्र हैं। मुस्लिम राजनीति में सर सैयद की परंपरा मुस्लिम लीग (1906 में स्थापित) के रूप में उभरी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (1885 में स्थापित) के विरूध्द उनका प्रोपेगंडा था कि कांग्रेस हिंदू आधिपत्य पार्टी है और प्रोपेगंडा आजाद-पूर्व भारत के मुस्लिमों में जीवित रहा। कुछ अपवादों को छोड़कर वे कांग्रेस से दूर रहे और यहां तक कि वे आजादी की लड़ाई से भी हिस्सा नहीं लिया। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि ब्रिटिश-भारत के मुस्लिम बहुल राज्यों मसलन-बंगाल, पंजाब में लगभग सभी स्वतंत्रता सेनानी हिंदू या सिख थे।

सर सैयद अहमद की सफलता में अंगरेजों का अपना निहित स्वार्थ था, क्योंकि उन्हें कांग्रेस के प्रतिकार के रूप में देखा गया, क्योंकि ए ओ ह्यूम द्वारा स्थापना के तीन वर्षों के अंदर अंग्रेजों को इस बात का अंदेशा हो गया था कि यह सेटी वाल्व की जगह भस्मासुर साबित होगा। अलीगढ़ कालेज का प्रधानाचार्य अंगरेज, मसलन-थिओडोर बेक व मोरीसन बने, जो सर सैयद अहमद की नीतियों के सक्रिय प्रवक्ता बने। इंग्लैंड में अपने जीवन व कैरियर को त्याग चुके बेक ने भारत में मुसलमानों की सेवा में अपने आप को समर्पित कर दिया। वह अलीगढ़ कालेज की 'इंस्टीटयूट गजेट' के कार्यकारी संपादक बने और अपने अनेक संपादकीय और लेखों में कहा कि भारत द्वि-राष्ट्र या अनेक राष्ट्र हैं और इसलिए संसदीय सरकार भारत के

लिए उपयुक्त नहीं है। यदि यह सौंपी जाती है तो बहुसंख्यक हिंदू ही शासक होंगे और कोई मुस्लिम शासक नहीं होगा।

बेक कहते हैं, 'कांग्रेस का उद्देश्य यह है कि देश की राजनीतिक सत्ता को हस्तांतरण ब्रिटिश से हिंदुओं के हाथ में हो। यह आर्म्स एक्ट को रद्द करने की मांग करती है और सेना के खर्च में कटौती चाहती है। जिससे परिणामस्वरूप सीमाप्रांत की रक्षा कमजोर होगी। मुसलमानों की इस मांग से कोई भी सहानुभूति नहीं है। इसलिए मुसलमानों व अंगरेजों को एकजुट रहना जरूरी है ताकि इन आंदोलनकारियों से लड़ा जा सके और लोकतांत्रिक सरकार को आने से रोका जा सके। इसलिए हम सरकार के प्रति स्वामीभक्ति व एंग्लो-मुस्लिम मित्रता की वकालत करते हैं।'

यहां पर, मार्च 16, 1888 को मेरठ में दिए गए सर सैयद अहमद के भाषण का संक्षिप्त उल्लेख जरूरी है:

क्या इन परिस्थितियों में संभव है कि दो राष्ट्र-मुसलमान व हिंदू-एक ही गद्दी पर एक साथ बैठे और उनकी शक्तियां बराबर हों। ज्यादातर ऐसा नहीं। ऐसा होगा कि एक विजेता बन जाएगा और दूसरा नीचे फेंक दिया जाएगा। ऐसी उम्मीद रखना कि दोनों बराबर होंगे, असंभव और समझ से परे है। साथ ही इस बात को भी याद रखना चाहिए कि हिंदुओं की तुलना में मुसलमानों की संख्या कम है। हालांकि उनमें से काफी कम लोग उच्च अंग्रेजी शिक्षा हासिल किए हुए हैं लेकिन उन्हें कमजोर व महत्वहीन नहीं समझना चाहिए। संभवत: वे अपने हालात स्वयं संभाल लेंगे। यदि नहीं, तो हमारे मुसलमान भाई, पठान, पहाड़ों से असंख्य संख्या में टूट पड़ेंगे और उत्तरी सीमा-प्रांत से बंगाल के आखिरी छोर तक खून की नदी बहा देंगे। अंग्रेजों के जाने के बाद कौन विजेता होगा, यह ईश्वर की इच्छा पर निर्भर करेगा। लेकिन जब तक एक राष्ट्र दूसरे को नहीं जीत लेगा और उसे आज्ञाकारी नहीं बना लेगा, तब तक शांति स्थापित नहीं हो सकेगी। यह निष्कर्ष ऐसे ठोस प्रमाणों पर आधारित है कि कोई इसे इनकार नहीं कर सकता।

आगा खां ने 1954 में अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के छात्रों को निम्न शब्दों में भेंट दी'प्राय: विश्वविद्यालय ने राष्ट्र के बौध्दिक व आध्यात्मिक पुनर्जागरण के लिए पृष्ठभूमि तैयार की है।...अलीगढ़ भी इससे भिन्न नहीं है। लेकिन हम गर्व के साथ दावा कर सकते हैं कि यह हमारे प्रयासों का फल है न कि किसी बाहरी उदारता का। निश्चित तौर यह माना जा सकता है कि स्वतंत्र, सार्वभौम पाकिस्तान का जन्म अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में ही हुआ था।' फखरूद्दीन अली अहमद के जीवनीकार रहमानी बंटबारे में अलीगढ़ की भूमिका के बारे में कहते हैं, '... 1940 के बाद मुस्लिम लीग ने अपने राजनैतिक सिध्दांतों के प्रसार के लिए इस यूनिवर्सिटी को एक सुविधाजनक और उपयोगी मीडिया के रूप में इस्तेमाल किया और

द्विराष्ट्र सिध्दांत का जहरीली बीज बोया।... यूनिवर्सिटी के अध्यापक व छात्र सारे देश में फैल गए और मुसलमानों को यह समझाने की कोशिश की कि पाकिस्तान बनने का उद्देश्य क्या है और उससे फायदे क्या हैं।

अक्टूबर 1947 में ऐसा पाया गया कि पाकिस्तानी सरकार ने अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी से अपनी सेना के लिए अफसरों की नियुक्ति की। उस समय उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री गोविंद बल्लभ पंत को यूनिवर्सिटी के उपकुलपति को आदेश देना पड़ा कि कोई पाकिस्तानी अफसर यूनिवर्सिटी न आने पाए। अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के संदिग्ध इतिहास के बावजूद सेक्युलर गुट कानून बनवाने में व्यस्त हैं कि मुस्लिम यूनिवर्सिटी को अल्पसंख्यक का दर्जा दिया जाए। यह हास्यास्पद लगता है, क्योंकि अल्पसंख्यक दर्जा के बिना ही यूनिवर्सिटी के 90 प्रतिशत छात्र और शिक्षक मुस्लिम हैं। इलाहाबाद हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट ने इस सेक्युलर प्रयासों पर विराम लगा चुकी है।

मुस्लिम अलगाववाद का विस्तारमुस्लिम समस्या (मुस्लिम अलगाववाद) प्रत्येक संवैधानिक सुधारों के बाद बढ़ती गई, जिसे ब्रिटिश सरकार ने उत्तरदायी सरकार बनाने के मकसद से किया। भारतीय परिषद् कानून (1892) ने पहली बार गवर्नर की विधान परिषद् में मुस्लिमों को अलग से प्रतिनिधित्व मिला। मुसलमानों को ऐसे वर्ग के रूप में चिह्नित किया गया, जिसका प्रतिनिधित्व होना था। यह बात अलग है कि उनका प्रतिनिधि मुसलमानों के द्वारा नहीं, बल्कि गवर्नर जनरल के द्वारा चुना जाना था। मार्ले-मिंटो सुधार से पहले के बहस-मुबाहिसे के लिए 1906 में एच. एच. खान के नेतृत्व में विशिष्ट मुसलमानों का एक प्रतिनिधिमंडल लार्ड मिंटो से शिमला में मिला।

उसने मांग की नगरपालिका तथा जिला परिषदों में पृथक निर्वाचन मंडल द्वारा मुसलमानों की निश्चित भागीदारी सुनिश्चित की जाय। प्रांतीय परिषदों में मुस्लिम समुदाय के राजनीतिक महत्व के अनुरूप हिस्सेदारी सुनिश्चित की जाय। यह भागीदारी एक ऐसे निर्वाचक मंडल के द्वारा तय की जाय, जिसमें केवल मुसलमान हों। इसी तरह की व्यवस्था इंपीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के लिए भी की जाय।

1909 का मार्ले-मिंटो सुधार, जिसने केंद्रीय व प्रांतीय विधान परिषदों का विस्तार किया, ने कुछ सदस्यों के चुनाव की व्यवस्था की। प्रत्येक परिषद् में अतिरिक्त मुस्लिम सदस्यों रखे गए। ये सदस्य पृथक मुस्लिम निर्वाचक मंडल से चुन कर आते थे। पृथक निर्वाचक मंडल मद्रास और असम प्रांतीय परिषद् के लिए छह, बांबे, बिहार, उड़ीसा और संयुक्त पांत के लिए चार और बंगाल के लिए पांच सदस्य चुनने का अधिकार था। साथ ही, मुस्लिमों को यह भी अधिकार था वे आम मतदाता के साथ चुनाव में हिस्सा ले सकें। वास्तव में अंग्रेजों द्वारा पृथक निर्वाचक मंडल की व्यवस्था पाकिस्तान के निर्माण की तरफ पहला कदम था। 1946 के

प्रांतीय चुनावों में उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रांत को छोड़कर, मुस्लिम लीग ने मुस्लिम क्षेत्रों में कांग्रेस को रौंद दिया।

सिविल सोसाइटी मूवमेंट में मुस्लिम विरोधमुस्लिमों की राष्ट्रीय राजनीति से जानबूझकर अलगाव बंगाल में पहली बार देखने को मिला। 1851 में बंगाल में ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन की स्थापना हुई जिसके अध्यक्ष राजा राधाकांत देब और सचिव देवेंद्र नाथ टैगोर बने। धर्म, जाति व भाषा के भेदभाव के बिना कोई भी भारतीय इसका सदस्य बन सकता था। शुरूआत से ही अखिल भारतीय दृष्टिकोण रखा गया और मद्रास व पुणे में इसी तरह के संगठनों से सहयोग भी किया गया।

एसोसिएशन की मांगों में क्या सांप्रदायिक हो सकता था। देश के स्थानीय प्रशासन में सुधार, कानूनों व नागरिक प्रशासन में आवश्यक सुधार ताकि भारतीयों की भलाई सुनिश्चित हो सके कर में कमी, जीवन और संपत्ति की सुरक्षा, ईस्ट इंडिया कंपनी के एकाधिकार से राहत, स्थानीय उद्योगों का विकास, लोगों की शिक्षा व उच्च प्रशासनिक सेवाओं में प्रवेश के लिए प्रोत्साहन या विधान सभा की दो-तिहाई सीटें भारतीयों के लिए सुरक्षित करना उनकी मांगें थीं।

लेकिन मुस्लिम इन आंदोलनों से यह बहाना बनाकर दूर रहे कि इसमें धनी जमीदारों का आधिपत्य है और यह वर्गीय हितों को देखता है। यह मुसलमानों के हितों का प्रतिनिधित्व नहीं करता, क्योंकि अधिकांश मुसलमान रैयत या किसान हैं। इसलिए मुसलमानों ने 1856 में मुहम्मडन एसोसिएशन की स्थापना की। संगठन का नाम समुदाय को दर्शाता है न कि किसी वर्ग को। लेकिन ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन ने यह कहकर मुहम्मडन एसोसिएशन की स्थापना का स्वागत किया कि यह राष्ट्रीय समस्या को हल करने में मदद करेगा। 1859 में ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन ने रैयत की मांगों का समर्थन किया और शोषक नील उत्पादकों के उस प्रयास में हिस्सा नहीं, जिसमें 1859 के एक्ट-ग् को रद्द कराने का प्रयास किया था। 1860 में इसने सरकार से अनुरोध किया कि इंडिगो प्लांटेशन संबंधी प्रश्नों को हल करने के लिए एक जांच कमेटी नियुक्ति की जाए। यह राष्ट्रीय हित में काम कर रही थी, हालांकि यह उसके वर्गीय हित के खिलाफ भी था। फिर भी मुहम्मडन एसोसिएशन की तरफ से कोई मदद नहीं मिली।

1867 में आनंदमोहन बोस और सुरेंद्र नाथ बनर्जी ने इंडियन एसोसिएशन की स्थापना की। ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन की तरह यह किसी उच्च वर्गों का प्रतिनिधित्व नहीं करता था, बल्कि इसका काम पढ़े-लिखे मध्यवर्गीय लोगों में राजनीतिक चेतना फैलाना था। इंडियन एसोसिएशन ने जनहित के लिए अनेक मुद्दों-जैसे आर्म्स एक्ट, वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट, बंगाल टीनैंसी एक्ट 1885 के पक्ष या विरोध में आंदोलन किया। इसने अर्थव्यवस्था, स्थानीय

स्वशासन, वैधानिक व्यवस्था तथा प्रेस की स्वतंत्रता जो सभी भारतीयों की हितों से संबंधित थे, के लिए जनमत तैयार किया। हिंदुओं तथा मुसलमानों के बीच दोस्ताना संबंध बनाना एसोसिएशन का एक प्रमुख उद्देश्य था।

परंतु, मुसलमानों की कृपा से यह केवल स्वप्न ही रह गया। 1877 में बंगाल का एक मुसलमान सैयद आमीर अली, जिसे अपने ईरानी वंशज होने का अभिमान था, ने सेंट्रल मुहम्मडन एसोसिएशन की स्थापना की। इसका घोषित लक्ष्य भारत पर मुसलमानों का सभी वैध और संवैधानिक तरीकों से कल्याण करने का था। उसने तर्क दिया कि मुसलमान शिक्षा और धन में पीछे हैं। इसलिए हिंदू-मुस्लिम भाई-चारा की बात करने के बावजूद कोई भी हिंदू वर्चस्व वाली संस्था मुस्लिम समाज के हितों को प्रतिबिंबित नहीं कर सकती। इसलिए मुसलमानों एक अलग मंच की जरूरत थी।

विचित्र बात यह थी कि जो मुसलमान सैयद आमीर अली का सेंट्रल मुहम्मडन एसोसिएशन से जुड़ रहे थे, उनकी सामाजिक आर्थिक स्थित उन हिंदुओं के समकक्ष थी, जो इंडियन एसोसिएशन के सदस्य थे। परंतु जब कि इंडियन एसोसिएशन समान भारतीय हितों का पहरेदार था, सेंट्रल मुहम्मडन एसोसिएशन केवल मुस्लिम हितों की बात करती है। पांच वर्षों के अंदर सेंट्रल मुहम्मडन एसोसिएशन की सदस्यता 100 से बढ़कर 500 हो गई। आमीर अली चतुराई से पचास शाखाओं का विस्तार बंगाल, बिहार, बांबे प्रेसीडेंसी, संयुक्त प्रांत, पंजाब से लेकर सुदूर लंदन तक किया। ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन अपना विलय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में उसकी स्थापना के समय कर दिया। लेकिन सेंट्रल मुहम्मडन एसोसिएशन ने कांग्रेस से दूरी बनाए रखा।

कांग्रेस की भर्त्सना करते हुए इलाहाबाद, लखनऊ, मेरठ, लाहौर, मद्रास तथा अन्य शहरों के मुसलमानों ने प्रस्ताव पारित किए। द् मुहम्मडन आब्जर्वर, द् विक्टोरिया पेपर, द् मुस्लिम हेराल्ड, द् रफीक ए हिंद तथा द् इंपीरियल पेपर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की आलोचना करने में एकजुट थे। इन समाचार पत्रों की कतरनें उत्तर भारत की एक प्रतिष्ठित मुस्लिम प्रकाशन, अलीगढ़ इंस्टीटयूट गजट में लगातार प्रकाशित होती रही।

सर सैयद के समय से लेकर जिन्ना के समय तक मुसलमान भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को हिंदू पार्टी कहकर आलोचना करते रहे। क्रांग्रेस ने मुसलमानों की आम भागीदारी अल्प रही। 1946 का अंतरिम चुनाव ने मुस्लिम मतदाताओं का मुस्लिम लीग के प्रति भारी समर्थन दर्शाया। मुस्लिम लीग साधारणतः अग्रेजों का वफादार रहा। फिर भी क्या कारण है कि मुस्लिम लीग स्वतंत्र भारत में कई दशकों तक यह मुसलमानों का सर्वाधिक प्रिय पार्टी बनी रही। यह बात तय हैं कि स्वतंत्रता-सह-बंटवारा की सुबह मुसलमान हिंदुओं के प्रति कोई विशेष प्रेम विकसित नहीं कर पाए। कांग्रेस शासन के दौरान अनेक बड़े दंगे भारत को अपने

चपेट में लेता रहा। इस विरोधाभास का उत्तर तब मिलता है, जब हम सुविधा के गठजोड़ की तरफ देखें।

युवराज कृष्ण (भारत-विद्या के महान विद्वान एवं सेवानिवृत्ता सिविल अधिकारी) ने अपनी पुस्तक 'अण्डरस्टैण्डिंग पार्टिशन' में कहा है: अपने प्रस्तावों में, मंचों पर और प्रेस में मुस्लिम लीग ने कांग्रेस, विशेष रूप से 8 प्रांतों में कांग्रेसी सरकार के खिलाफ जमकर प्रचार किया। कांग्रेस पर आरोप लगाया गया कि उसने हिन्दू राज्य की स्थापना और भारत के मुसलमानों की संस्कृति एवं धर्म तथा उनके राजनीतिक व आर्थिक अधिकारों को मिटा डालने का इरादा कर रखा है। आरोपकर्ताओं को बार-बार चुनौती दी गई कि वे साम्प्रदायिक अत्याचार और मुसलमानों पर प्रभुत्व जमाने के कुछ तो उदाहरण पेश करें। इस चुनौती के जवाब में उन्होंने बड़े अस्पष्ट और अनिश्चित प्रकार के आरोपों, एक-तरफा कहानियां बनाने, विकृत भ्रांतियां और अतिश्योक्तिपूर्ण बातें ही कहीं। उन्होंने मुस्लिम संस्कृति को कुचलने के प्रयासों के उदाहरण पेश किए, उनमें वन्देमातरम् गान, सार्वजनिक संस्थानों पर राष्ट्रीय ध्वज फहराने, हिन्दुस्तानी का प्रचार करने जैसी बातें शामिल है। इस प्रकार की गतिविधियां कोई नई नहीं थी। 1920 से ही राष्ट्रीय ध्वज विदेशी शासन के खिलाफ और राष्ट्रीय अखण्डता का प्रतीक रहा है। वर्तमान शताब्दी के आरम्भ से ही ऐतिहासिक एसोसिएशनों ने राष्ट्रीय गीत के रूप में वन्देमातरम् का गान करती रही है और विभाजन से पहले से ही चलता आ रहा था। इसके खिलाफ मुस्लिम आन्दोलन एक नई बात थी। यहां भी, कांग्रेस ने केवल इस गीत के उस अंश को गाने की अनुमति दी थी जिस पर किसी को कोई आपत्ति हो ही सकती थी। कांग्रेस ने जिस आम भाषा की वकालत की थी, वह हिन्दुस्तानी थी, जिसे उत्तरी भारत में बोला और नागरी अथवा देवनागरी लिपि में लिखा जाता था। ये सभी गतिविधियां बहुत पुरानी थीं परन्तु इनके बारे में लीग का विरोध नया था। फिर भी, हर जगह जहां भी विरोध हुआ, कांग्रेसजनों और कांग्रेस सरकार संघर्ष से बचती रही।

मुस्लिम लीग की परिषद ने कांग्रेसी सरकारों के खिलाफ ऐसे सभी तथा अन्य अस्पष्ट से आरोपों को इकट्ठा करने के लिए एक विशेष समिति बनाई। एक रिपोर्ट पेश हुई जो पीरपुर रिपोर्ट के नाम से विख्यात है। इसके शीघ्र बाद ही संसदीय उप-समिति के अध्यक्ष श्री वल्लभभाई पटेल ने कांग्रेसी मंत्रियों से प्रत्येक आरोप की जांच करने और रिपोर्ट देने को कहा। कांग्रेसी सरकारों ने इन सभी आरोपों का ब्यौरेवार उत्तार तैयार कर उन्हें बेबुनियाद बताते हुए विज्ञप्तियां जारी कीं। क्या आज भी ये परिचित सी नहीं लगती हैं? अब जरा कांग्रेस के स्थान पर भाजपा को और विभाजन पूर्व मुस्लिम लीग के स्थान पर कांग्रेस और अन्य सेक्युलर पार्टियों को रख कर देखें तो आपको महसूस होगा कि जैसे इतिहास फिर से दोहराया जा रहा है।

गांधी और मुस्लिम तुष्टीकरणकांग्रेस के नेता सदा ही मुस्लिमों को अपने साथ जुटाने के लिए लालायित थे। कुछ मुस्लिम पुरुष जैसे बदरूद्दीन तैयबजी (1887), रहिमतुल्ला एम. सायानी (1896) और नवाब सैय्यद मौहम्मद बहादुर (1919) इसके अध्यक्ष भी बने। परन्तु एक समुदाय के रूप में मुस्लिम कांग्रेस से अलग ही रहे। सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने लिखा है: **"हम इस महान राष्ट्रीय कार्य में अपने मुसलमान देशवासियों का सहयोग प्राप्त करने के लिए जी-तोड़ प्रयास कर रहे हैं। कभी-कभी तो हमने मुसलमान प्रतिनिधियों को आने-जाने का किराया तथा अन्य सुविधाएं भी प्रदान कीं।"**

मुस्लिम सहयोग पाने के लिए जरूरत से ज्यादा झुक जाने की परम्परा गांधीवादी कांग्रेस की विशेषता बन गई थी। गांधी ने मजहबी-नैतिक दृष्टि से 'हिन्दू-मुस्लिम एकता' मुद्दे को देखा। उन्होंने इसे अपने सिध्दांत हिंसा की तरह स्वतंत्रता आंदोलन के लिए अपनी आस्था का मुद्दा बना लिया, हालांकि उनके इस सम्पर्क प्रयास को बहुत कुछ सफलता नहीं मिली। सम्भवत, शायद ही कुल चार प्रतिशत मुस्लिम जनसंख्या ही कांग्रेस की तरफ आकर्षित हो पाई। वस्तुत: गांधी पहले ऐसे कांग्रेसी नेता थे जिन्होंने मुसलमानों को सुधारने की कोशिश की और उन्होंने निष्क्रिय पड़े खलीफाओं के संस्थानों को बचाने के लिए भी कट्टरवादियों के साथ हाथ मिलाया। मुस्लिम लीग (1906 में स्थापित) शिक्षित कंजर्वेटिव लोगों का केन्द्र थी, परन्तु ये ऐसे दकियानुसी मुस्लिम नहीं थे, जिन्होंने मुस्लिम हितों को आधुनिक आधार पर आगे न बढ़ाया हो। लीग बड़ी कड़ाई से खलीफा आन्दोलन से दूर रहे क्योंकि वे मानते थे कि इससे कट्टरवादियों को शह मिलेगी। परन्तु गांधीजी ने खिलाफत का चैम्पियन बनकर जबरदस्त परिवर्तन ला दिया। उनके सुप्रसिध्द असहयोग आन्दोलन 1 अगस्त 1920 (जैसा कि उसी दिन की तारीख के वाइसराय को लिखे उनके पत्र से स्पष्ट है) निजी स्तर पर शुरू हुआ, जो वास्तव में खिलाफत प्रश्न पर था, जिसका उल्लेख 4 सितम्बर 1920 के कांग्रेस प्रस्ताव में हुआ था। उक्त प्रस्ताव को पढ़ने से स्पष्ट है कि असहयोग आन्दोलन खिलाफत की बहाली के लिए शुरू किया गया और स्वराज की बात तो जैसे सरसरी तौर पर कही गई हो। गांधी जी का खिलाफत आन्दोलनखिलाफत तथा असहयोग आन्दोलन ने मुस्लिम दकियानूसी ताकतों को भारतीय राजनीति में फिर से ले आया जो 1857 के बाद से कभी संभव नहीं हो पा रहा था। बहुत से मुस्लिमों के लिए जो सामान्यतया अनपढ़ होते हैं, स्वराज भारत में मुस्लिम शासन की पुन: स्थापना का पर्याय बन गया। मालाबार (केरल) में भयावह माफला नरसंहार इसका उदाहरण है। खिलाफत आंदोलन से उपजी सर्व-इस्लामी सरगर्मी में हताश होने का आक्रोश हिन्दुओं पर उतरा। दंगों की लहर दौड़ गई जिसमें हिन्दुओं को भारी नुकसान उठाना पड़ा। फिर भी गांधी जी ने (6 दिसम्बर 1924 के) **'यंग इण्डिया' अंक में लिखा: "हिन्दू-मुस्लिम एकता किसी भी तरह चरखा-कताई से कम महत्वपूर्ण नहीं है। यह हमारे जीवन की श्वास-रेखा है।"**

गांधी जी ने भारतीय मानस को चकाचौंध कर दिया, परन्तु ये हिन्दू ही थे जिन्होंने गांधी को एक राजनीतिक नेता से कहीं अधिक उनका 'ईश्वरीय रूप' स्वीकार कर लिया। परन्तु गांधी में हिन्दुओं की इस आस्था का शोषण हुआ, क्योंकि उनकी यह आस्था अंध-विश्वासी थी। क्या हिन्दुओं को 23 मार्च 1940 के 'हरिजन' में गांधी जी ने जो कुछ कहा था, उसे मान लेना चाहिए था- **"यह मुस्लिम ही थे, जिन्होंने अकेले जोर-जबर्दस्ती से या अंग्रेजों की सहायता से अशांति भारत पर लाद दी थी।" यदि कांग्रेस को अपने पक्ष में कर सकता हूं तो मैं मुसलमानों को ताकत का उपयोग नहीं करने दूंगा। मैं उन्हें अपने ऊपर शासन करने दूंगा क्योंकि आखिर फिर भी यह भारतीय शासन ही होगा।"** (देखिए कलेक्टेड वर्क्स आफ महात्मा गांधी, खण्ड 78, पृ. 66)।

गांधी जी ने बहुत पहले राष्ट्र के पीठ पीछे 1944 में विभाजन पर बातचीत की थी, जब वे जिन्ना से मालाबार हिल्स, बम्बई के निवास पर चौदह बार मिले थे। फिर भी, वे 1947 तक विभाजन की संभावना से इंकार करते रहे, परन्तु उन्होंने इसे रोकने के लिए जरा कुछ नहीं किया। गांधी जी ने 'मुस्लिम प्रश्न' पर सबसे बड़ा नुकसान किया जब उन्होंने यह कह कर इतिहास को झुठला दिया कि ब्रिटिश शासन से पहले हिन्दु-मुस्लिम वैर-भाव नहीं था और अंग्रेजों ने इसकी शुरूआत की। गांधी जी के हिन्दू-मुस्लिम एकता के सिध्दांत ने हिन्दुओं के साथ धोखा किया क्योंकि उनके शांतिवाद ने हिन्दुओं को कमजोर कर दिया। कम्युनिस्ट और तुष्टिकरणभारतीय राजनीति में सबसे अधिक पथ भ्रष्ट लोग कम्युनिस्ट हैं। 1943 तक भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी मास्को-आधारित कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल का भारतीय अध्याय बनी रही।

एम.एन. राय की 'दि हिस्टोरिकल रोल आफ इस्लाम' (1937) में लिखा है कि कम्युनिस्टों का दृष्टिकोण इस्लाम को क्रांतिकारी और हिन्दू धर्म को पश्चगामी बताया गया है, जबकि अपने आवरण परिचय में राय ने लिखा है कि **"इस्लाम की अपार सफलता के पीछे प्रमुख कारण यह रहा है कि इस्लाम ने ग्रीस, रोम, पर्शिया तथा चीन एवं भारत की प्राचीन सभ्यताओं के पतन से उत्पन्न अत्यंत निराशाजनक स्थितियों से लोगों को बाहर निकालने की क्रांतिकारी क्षमता रही है।"**

राय का कहना है कि आज भारत, विशेष रूप से हिन्दुओं में मानव संस्कृति के अंशदान में इस्लाम की जो ऐतिहासिक भूमिका रही है, उसको समुचित ढंग से समझने का सर्वोच्च राजनीतिक महत्व बन गया है।" राय का मानना है कि मुस्लिमों के प्रति हिन्दुओं की पूर्वाग्रह की जड़ में इतिहास की गुलामी के संस्मरण पीड़ा पहुंचाते हैं।

राय मुस्लिम हमलावरों मंदिर-विध्वंस की कार्रवाई को न्यायसंगत मानते हैं। "युगों से, थानेश्वर, मुत्तारा, सोमनाथ आदि प्रसिध्द मंदिरों की जा रही दैवीय चमत्कारिक शक्तियों से

लाखों लोगों को राहत मिली। इन मन्दिरों के पुजारियों ने लोगों की भावना के आसरे पर विशाल धन-सम्पत्ति जमा कर ली थी। अचानक ही, इन क्रूरर हमलावरों के आघात से कार्ड के पत्तो की तरह यह आस्था और परम्परा का सम्पूर्ण ढांचा टूट गया। जब मौहम्मद की सेना हमला करने आई तो पुजारियों ने लोगों को बताया कि हमलावर ईश्वर के भयानक आक्रोश का शिकार हो जाएंगे। लोगों को चमत्कार की आशा थी, जो पूरी नहीं हुई। बल्कि हमलावरों के ईश्वर ने चमत्कार कर दिखाया। चमत्कार पर आधारित होने के कारण आस्था भी उसी चमत्कारिक ढंग से बदल गई। मजहब के सभी पारम्परिक स्तरों की हिसाब से उस संकट के समय जिन लोगों ने इस्लाम कबूल कर लिया, उन्हें सबसे अधिक धार्मिक माना जाने लगा।" राय के अनुसार इस्लाम में आस्था मजहब है, परन्तु हिन्दू धर्म में आस्था मात्र अंधविश्वास बन कर रह गया।

बाद में उसी वर्ष मुस्लिम लीग ने लाहौर में (1940) के विभाजन या पाकिस्तान का प्रस्ताव पारित हुआ तो कम्युनिस्टों ने आल इण्डिया स्टूडेण्ट्स फेडरेशन के सम्मेलन में मल्टीपल विभाजन प्रस्ताव पेश कर दिया। वहां हिरेन मुकर्जी और के एस अशरफ ने पूरे भारत की ओर से कांग्रेस को चुनौती दे डाली। प्रस्ताव पारित किया गया कि **"भारत के भविष्य को पारस्परिक विश्वास के आधार पर क्षेत्रीय राज्यों का स्वैच्छिक परिसंघ होना चाहिए।"** इस प्रकार कम्युनिस्टों ने भारत के आदर्शों को मल्टी नेशनल राज्यों के रूप में स्वीकार किया। जहां जिन्ना ने 'द्विराष्ट्रीय सिध्दांत' का प्रचार किया, वहीं कम्युनिस्टों ने 'मल्टीनेशनल थियोरी' का प्रतिपादन कर दिया।

कम्युनिस्टों ने इसी थियोरी पर चलते हुए पाकिस्तान के हितों का समर्थन किया। सच तो यह है कि कम्युनिस्टों ने जिन्ना के हाथों में 'आत्म-निर्णय के उस अधिकार' को सौंप कर जिन्ना की वह आवश्यकता पूरी कर दी जो उसे आधुनिक भाषा के रूप में पाकिस्तान बनाने की युक्तिपूर्ण ठहराने के लिए जरूरी थी। सितम्बर 1942 में सीपीआई के केन्द्रीय समिति ने प्रस्ताव पारित किया।

स्वतंत्रता के बाद की कम्युनिस्ट रणनीतिस्वतंत्र भारत में कम्युनिस्टों ने बुध्दिजीवियों (मीडिया) पर कब्जा कर लिया। नेहरू की कृपा से वे ऐसा करने में सफल रहे क्योंकि नेहरू का कम्युनिज्म के प्रति गहन आकर्षण था, नेहरू सोवियत संघ के प्रशंसक और चीन के मित्र थे। जबकि कम्युनिस्ट सभी धर्मों को खारिज करते हैं या उनसे बराबर की दूरी बनाकर रखते हैं, परन्तु वास्तव में उनका झुकाव मुस्लिमों के प्रति रहा। वामपंथियों ने मुस्लिमों के मूर्ति भंजन और मध्ययुग में उनके अत्याचारों को तो सराहा परन्तु मीडिया में हिन्दुओं के झगड़ों को बढ़ा-चढ़ा कर दिखाया और मुस्लिम कट्टरपंथियों पर ध्यान नहीं दिया और 'हिन्दुओं की छवि फासीवाद' बना डाली।

स्वतंत्र भारत के मुस्लिम कांग्रेसी की तरफ क्यों झुके?भारत के विभाजन का मतलब था कि दो तिहाई मुस्लिम पाकिस्तान का हिस्सा बन गए। बाकी एक तिहाई मुस्लिम हिन्दुबहुल भारत में जनसांख्यिकी रूप से कमजोर थे। पाकिस्तान से आने वाले हिन्दू और सिखों की दर्दनाक गाथा ने भारत में मुस्लिम विरोधी मिजाज तैयार कर दिया था। भारत के मुसलमान स्वयं को मुसीबत में महसूस कर रहे थे। ब्रिटिश शासन के स्वर्ण युग में उन्होंने जिस कांग्रेस की भर्त्सना की थी, अब वह कांग्रेस धोती-धारिया वाली, संघर्ष करने वाली पार्टी नहीं रह गई थी, अब तो वह सत्ता में थी और देश के शासन पर पूरा अधिकार था। इसके अलावा, सेना और पुलिस में, जहां ब्रिटिश शासन में मुस्लिमों का प्रभुत्व था, अब यहां हिन्दू विराजमान थे। अब इन मुस्लिमों ने खत्म हो जाने की बजाए घास खाना पसंद किया। उन्होंने कांग्रेस की छत्रछाया में जाना उचित समझा। यह सर सैयद अहमद खां की नीति जैसा था कि अगर आप शत्रु को हरा नहीं सकते तो उसके साथ जा मिलो। इस व्यक्ति ने 1857 से पहले ब्रिटिश और मुस्लिम, जो दोनों एक दूसरे के जानलेवा का दुश्मन थे, के बीच न केवल आपस में मेल मिलाप कर दिया, बल्कि, एक विशेष सम्बंध भी बनवा दिए। इस कारण यह था कि वे दोनों स्थितियों में जीत की हालत में थे।

यह पूछा जा सकता है कि स्वतंत्र भारत में कांग्रेस को मुस्लिमों से क्या लाभ हुआ? स्पष्ट है कि इसे चुनावी लोकतंत्र में उन्हें मत प्राप्त हुए। इसके अलावा, हालांकि मुस्लिमों ने सदा ही कांग्रेस को दुलारा है, फिर भी कांग्रेस उन्हें अपनी तरफ आकर्षित करने में लगी रहती है, चाहे इसके लिए उन्हें कितना ही झुकना न पड़े। कांग्रेस को विभाजन की प्रतिक्रिया स्वरूप हिन्दू राष्ट्रवादी पार्टियों से भय था कि कहीं वे उसे चुनौती देकर अपना एकाधिकार न कर लें। हिन्दू राष्ट्रवादी पार्टी जनसंघ ने भारत के प्रथम आम चुनाव में भाग लिया। नेहरू चुनाव परिणामों में असफल नहीं होना चाहते थे, इसीलिए वे मुस्लिम मतों की तरफ झुके। नेहरू मुस्लिम मतों के बिना भी जीत सकते थे। परन्तु पूरे के पूरे मुस्लिम मतों को अपनी तरफ आता देख कर वह उन मतों की तरफ झुक गए। चुनावों में मुस्लिम मतों से अतिरिक्त लाभ लेने के लिए 'सेक्युलरिज्म' की बात कही जाने लगी।

नेहरू हिन्दू धर्म को अवमानना की दृष्टि से देखते थे और मानते थे कि वह संयोग से ही हिन्दू हैं। उन्होंने एक थियोरी निकाली कि फासीवाद हिन्दू राष्ट्रवाद के माध्यम से आ सकता है। वह कांग्रेस में हिन्दू प्रवृत्ति की तरफ झुकने वाले लोगों से परेशान थे जैसे राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद, सरदार वल्लभभाई पटेल, पीडी टण्डन, केएम मुंशी आदि। नेहरू की मृत्यु पर सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा था कि नेहरू जन्म से ब्राह्मण, शिक्षा में यूरोपीय और आस्था में मुसलमान थे। सरदार वल्लभ भाई पटेल ने नेहरू को भारत का राष्ट्रवादी मुसलमान बताया था। वे हिन्दू राष्ट्रवाद के खिलाफ इस लड़ाई में मुस्लिमों को स्वाभाविक विदेशी

मानते थे। मुस्लिमों के लिए इसका अर्थ सर सैयद अहमद बनाम अंग्रेजों द्वारा इस्तेमाल की गई प्रतिकृति थी।

मदरसेकांग्रेस एकाधिकार की कब्रगाह से निकली अन्य पार्टियों ने सेक्युलरिज्म को राजनीतिक अनिवार्यता बना दिया। हर पार्टी ने 'सेक्युलर' की गलत राह पर चलने के लिए कांग्रेस को मात देने की कोशिश की। इमाम, मौलाना और मौलवियों पर उनकी निर्भरता के कारण मदरसों, उर्दू आदि की प्रगति के लिए दी जाने वाली राशि ने एक विस्फोटक स्थिति पैदा कर दी है। आज भारत में स्वतंत्रता के बाद कुछ हजार मदरसों की तुलना में लाखों-लाखों मदरसे खड़े कर दिए हैं।

अच्छे से अच्छे वातावरण में भी मदरसों की पाठयचर्या में दीने-तालीम केन्द्रित रहता है अर्थात् यहां कुराने-पाक, अदीस, शरीयत लॉ, इस्लामिक धर्मशास्त्र, अरबी, फारसी और उर्दू की पढ़ाई की मजहबी शिक्षा दी जाती है। विद्यार्थियों को भारत में इस्लाम के आगमन और इसके अरबिया, पार्शिया, मिस्र और टर्की आदि में फैलाव का इतिहास पढ़ाया जाता है। मदरसे की पाठयचर्या से शायद ही आज के विश्व से कोई जुड़ाव रहता है और सच तो यह है कि इसके कारण उनके यहां जन्म लेने वाले देश तथा अन्य समुदायों की संस्कृति से उनका कोई नाता नहीं रहता है।

अलगाव की प्रक्रियाइसमें कोई सन्देह नहीं कि मुस्लिम राष्ट्र की आकांक्षाओं तथा चिंताओं की मुख्यधारा से अलग-थलग पड़ गए हैं, जिसकी शुरूआत ब्रिटिश इण्डिया से हुई थी और अब उसकी गति 'सेक्युलर षडयंत्र' की सक्रिय मदद से स्वातंत्र्योत्तार युग में बढ़ गई है। 1969 में मुस्लिम लीग के दबाव में मालापुरम के मुस्लिम बहुल इलाकों कोकुछ अन्य जिलों की भौगोलिक सीमाओं का पुनर्गठन कर बनाया गया। एक सेक्युलर राज्य द्वारा मजहबी आधार पर एक नया जिला बनाया गया ताकि मुस्लिम गैर मुस्लिम काफिरों के प्रभुत्व से मुक्त होकर रह सके।

तुष्टिकरण की कीमत चुकानी पड़ती है। कांग्रेस सरकार ने 1959 में मुस्लिमों की हज सब्सिडी शुरू की थी। 57 मुस्लिम देशों में से कोई भी ऐसी सब्सिडी नहीं देता है। तुष्टिकरण नीति के अन्तर्गत राजीव सरकार ने मुस्लिम महिला (तलाक के अधिकार का संरक्षण) अधिनियम 1986 पारित किया और शाहबानो जजमेंट को शून्यीकृत बना दिया। गांधीजी की कांग्रेस ने 1932 में 'कम्युनल एवार्ड' खारिज कर दिया था। परन्तु अब सोनिया गांधी की कांग्रेस ने सरकारी नौकरियों में मुस्लिम आरक्षण की शुरूआत कर दी है। कांग्रेस पार्टी उस मुस्लिम लीग के साथ सरकार बनाने पर खुश है, जिसने पाकिस्तान की मांग की और वह बन भी गया। 'सेक्युलर षडयंत्र' आतंक के प्रति नरम रूख अपनाए है और यूपीए सरकार ने 1995 में बने टाडा की तरह ही पोटा को भी निरस्त कर दिया है। युध्द में लिप्त कश्मीर से सुरक्षा

बलों को हटाने की योजना बन रही है। सेक्युलर प्रचार की कृपा से देश ने जनसांख्यिकीय हमलों को भुला दिया है, जिससे देश की सुरक्षा और भविष्य को गम्भीर खतरा पैदा हो गया है।

द्वितीय विश्व युध्द के आरम्भ होने से पहले ब्रिटिश द्वारा अपनाई गई जर्मनी के बारे में तुष्टिकरण की नीति की आलोचना करते हुए सर विंस्टन चर्चिल ने कहा था: "अब भी, अगर आप उन अधिकारों के लिए नहीं लड़ेंगे, जबकि आप बिना खून खराबे के जीत सकते हैं; यदि आप उस विजय के लिए नहीं लड़ेंगे जो निश्चित ही आपको मिलेगी और यह विजय महंगी भी नहीं रहेगी; तो फिर आप ऐसे क्षण पर पहुंच जाएंगे जब आपको अपने ही खिलाफ हर प्रकार की मुसीबत का सामना करना पड़ेगा और आपके लिए जिंदा रहने का बहुत कम अवसर रह जाएगा।" क्या यही कथन आज हमारे लिए भी प्रासंगिक नहीं होगा।

श्री बलबीर पुंज के लेखों पर आधारित

बी एन शर्मा